UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180603

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. Accession No.

Author

Title

This book should be returned on or before the date last marked below.

उ र बा ती

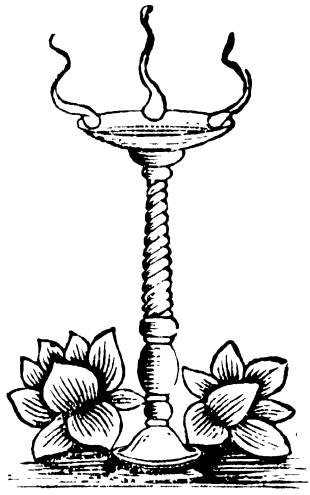

लेखिका

दिनेशनंदिनी एम. ए.

★

प्रकाशक :

नन्दकिशोर ॲन्ड ब्रदर्स, चौक बनारस

★

मुद्रक :

दि सेंट्रल इंडिया प्रिंटिंग ॲन्ड लिथो वर्क्स, लिमिटेड सिताबर्डी नागपूर.

नागपुर १९४६] [मूल्य एक रुपया

" दादा को "

दिनेशनंदिनी

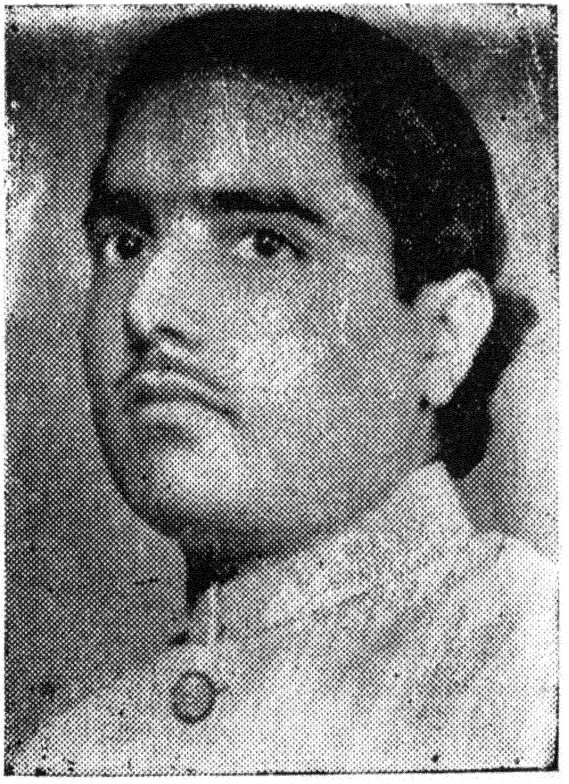

कुंजबिहारीलाल चोरडिया

एम्. ए. एल्. एल्. बी.

आदि पृष्ठ

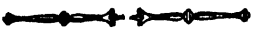

किसी कविता का 'आदि-पृष्ठ' लिखना उतना ही कठिन है जितना दूब या पत्तियोंपर बिखरे हुए ओस-कणों का ज्यों का त्यों बटोरना। आज वह मन के कानों का माधुर्य नहीं रह गई, वह 'रोटी' के सामने 'चीखने' वाली आवाज़ बन रही है। उसे समाज की ओर ताकना चाहिये या समाज को उसकी ओर; यह युग का आतुर प्रश्न है पर प्रश्न यह भी है कि जब समाज की वर्णमाला ही बिखर गई है तब कविता किस 'वर्ण' का कण्ठ बने? हम समाज के आज के बुर्जुआ' का विध्वंस करना चाहते हैं पर ऐसा लगता है, हम अबुर्जुआ में वह 'नशा' भी भर रहे हैं जो कल के 'बुर्जुआ' का निर्माण का स्वप्न देख रहा है। 'शीर्षासन' से-उलट-पुलट (Topsy Turvy) स्थिति-से लाभ नहीं होता; ऐसा मैं नहीं कहता पर यह स्थिति क्रमशः आनी चाहिये। अन्यथा समाज-शरीर का एकदम विपरीतकरण 'शरीर'के नाशका ही कारण बन सकता है। समाज की मान्यताओं—धारणाओं -में परिवर्तन की आवश्यकता अमान्य नहीं है पर उसकी विकास-प्रणाली में मत-भेद की गुंजाइश है। आग-तूफान के बाहरी झोंकों से उसे जड़ से उखाड़ फेंकना एक उपाय है; उसी में कुछ तत्वों का समावेश कर उसका काया-कल्प कर देना दूसरा उपाय है। प्रथम उपाय से समाज के नाश में विलम्ब कम लग सकता है

पर नवीन समाज कब बनेगा और उसका कैसा रूप होगा, यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता। परन्तु दूसरे उपाय से जब 'समाज' का परिवर्तन किया जाता है तब हम उसके परिवर्तित रूप की पहिले ही 'रेखा' जान लेते हैं। उसका सर्वथा नाश तो कभी संभव नहीं हो सकता। समाज का प्रथम प्रणाली से विकास (?) देखनेवाले अपने को 'प्रगतिशील' और शेष सब को प्रतिक्रियावादी कहते हैं। हमारे देश में गांधीवाद समाज में दूसरी प्रणाली से क्रान्ति उपस्थित करना चाहता है। अतः यह 'वाद' भी पुरोगामी नहीं समझा जाता।

कविता को किसी "वाद" की अपेक्षा 'मनुष्य' को ही अपने में उतारने की चेष्टा करनी चाहिये क्योंकि सभी 'वादों' का जन्म और पर्यवसान 'मनुष्य' को लेकर ही होता है। उसी के चारों ओर वे घूमते हैं; उसीके विकास और परिवर्तन का उपाय खोजते हैं। व्हिटमनने 'मनुष्य' को ही अपने साहित्य का शृङ्गार समझा। रविबाबू भी एक स्थल पर यही कहते हैं कि "हम साहित्य में समग्र मनुष्य को पाने की आशा करते हैं।" उन्होंने यह भी चेतावनी दी कि वास्तविकता के नाम पर 'पेटूपन' को यदि कोई 'पृथ्वी का एक चिरंतन सत्य' मान कर चित्रित करे तो हम उससे कहेंगे कि साहित्य में हम सत्य को नहीं, 'मनुष्य' को चाहते हैं।"

'मनुष्य' को चाहने का आशय मनुष्य के प्रेम, करुणा, घृणा, भय, बीभत्स आदि सभी मनोविकारों का चित्र-दर्शन है। जो 'मनो-विकारों' द्वारा सामुहिक परिवर्तन में विश्वास करते हैं, वे समाज को 'विकार' विशेष से ही विकम्पित करते रहते हैं पर क्या इससे 'समग्र मनुष्य' का 'निर्माण'

हो सकता है ? इसीलिये साहित्य में भी 'समरसता' की दार्शनिकता समीचीन जान पड़ती है। साहित्य जो समाज के आगे 'मशाल लेकरचलना चाहता है,' अपने में किसी एक विकार, एक ही भावना, को भरकर संतुष्ट नहीं हो सकता। उसे विविध भावनाओं को लेकर विविधाङ्गी बन कर सभी रूचि का पोषण करना होगा।

मनोभावनाओं के साहित्य में मनुष्य के अन्तर के रूप-दर्शन को कोई 'चटोरापन' भले ही कहे पर उसके बिना किसी समाज के किसी भी अंग की बौद्धिक भूख नहीं बुझ सकती।

'मनुष्य' के बाह्य वर्णन मात्र से हम किसी के मन में उसकी पूर्ण दशा को उतारकर अधिक समय तक टिकाये नहीं रख सकते; उसकी भावनायें यदि हम तक पहुँचती हैं तो हम शीघ्र ही प्रभावित हो उठते हैं और उसकी ओर खिंच जाते हैं। संसार के महान से महान विप्लव भावनाओं के ही जीवित इतिहास हैं। अतएव 'भावनाओं' के चित्रण का साहित्य में मूल्य कुछ नहीं है, ऐसी धारणा भ्रामक है।

काव्य-साहित्य में एक भावना विशेष का ही रुदन सुन पड़ता है, यह सच है। आदि कवि की वाणी भी उसी से भींगी थी। संभवतःमानवता का विकास 'करुणा' में निहित है; इसी को पूर्णरूप से विकसित करने के लिये सदियों से मानव चेष्टाएं जारी हैं रवीन्द्रनाथ का एक अत्यन्त प्रसिद्ध गीत है—

'आमार माझारे जे आछे, से गो
कोनो विरहिणी नारी।'

कवि ने अपने गान में बरबस अश्रू-जल की आर्द्रता देख कर

संभवतः यह अनुभव किया होगा कि मुझ में कोई विरहिणी नारी पल पल विकल हो रही ह। ज्ञात नहीं उनकी इस विकलता का प्रारम्भ किस युग में हुआ था और कितने युगों तक उसका प्रावृट-दर्शन चलता रहेगा। कहा जाता है, विद्यापति की इन पंक्तियों के साथ उनका 'सहज' तादात्म हो जाता था—

'सखि हे हमर दुखक नहिं छोर।
ईभर बादर माह भादर,
सून मँदिर मोर।'

सांसारिक समस्त वैभव के बीच रह कर भी कवि के हृदय की शून्यता रो उठती थी। ऐसा प्रतीत होता है कि वह यहाँ सब कुछ पाकर भी उसे नहीं पा सका जिसे पाकर फिर कुछ पाने को शेष नहीं रह जाता। ईलियट 'उसे' ही खोजने की निम्न पंक्तियों में उत्सुकता बतलाता है—

...'men ought to be explorers
Here and there does not matter
We must be still and still moving
In to another intensity
for a further Union, a deeper Communion.'

उर-बाती भी करुणा का उच्छ्वास है। उसमें भी ऐसे संकेतों की कमी नहीं है—'क्या इस दुःख का अन्त न होगा?' 'कौन वह मुझको बुलाता?' 'प्राण चलो उस पार' आदि में किसी अप्राप्य की खोज पढ़ी जा सकती है!

'खोजने निकली तुम्हें थी,
खोज ही मैं बन गई हूँ।"

' महादेवी ' का एक गीत है—

' इन श्वासों के इतिहास आँकते दुख बीते
रोमों में भर भर पुलक लौट ते पल रीते,
यह ढुलक रही है याद नयन से पानी नहीं;
अलि कुहरा सा नभ विश्व मिटे बुदबुद सा,
यह दुख का राज्य अनन्त रहेगा निश्चल सा,
हूँ प्रिय की अमर सुहागिनि पथ की निशानी नहीं।
मैं प्रिय पहचानी नहीं। "

' उसे ' यहां देख कर भी पहचानना कठिन हो जाता है। जब हम ' उसे ' खो देते हैं तब उसकी याद आती है और 'वह' आँखों के पानी के रूप में वह बह उठती है। न जाने कितने ' रूप ' में 'वह' आता है और हर बार हम उसके निकट नहीं पहुँच पाते और छले जाते हैं। यह छलना युग-युग से चलती जा रही है। हमारा ' पीड़ा का राज्य ' इस तरह कभी मिटता ही नहीं। ' उरबाती ' में इसी ' पीड़ा-राज्य ' की आशा-निराशा आँखों के पानी में तैर रही हैं। ' उसका ' इलथ शृङ्गार कभी उसे जलाता है, कभी ' स्नेह ' से भर देता है। मिटने और बनने का यह व्यापार बे रोक जारी है।

" वे आये थे उन्माद लिये, झर-झर करता सा प्यार लिये
सो न जुही की आँखों में अपना नन्हा संसार लिये।
मैं उनको पहचान सकी ?
छली गई, रो भी न सकी !

और भी

' आज मैं जी भर भर रोलूँ !
असह्य नियति की लहरों में कब तक रह रह डोलूं ?"

कभी कभी कवियित्री को शायद बे मालूम ही यह भी मालूम होता है कि उसकी खोज का पथ सूना है और उस पर चल कर वह 'भूल' कर रही है। फिर प्रश्न है-क्या पथ का अँधकार उषा सा पावन नहीं बन सकेगा? प्रश्न का यह चिन्ह कहीं विराम नहीं बनता। यही औत्सुक्य, यही Yearning उसकी बाती को संजोये हुए है। काव्य की चरम अभि व्यक्ति अप्राप्य की प्राप्ति-ईषणा में ही देखी जाती है।

कवियित्री का गीत के क्षेत्र में प्रवेश नया होने पर भी वह नया लगता नहीं है। ऐसा भासता है, कोई पग डंडियों से न चल कर अब व्यवस्थित बने 'लान' पर चल रहा है। गति में कुछ सहम और भूला भूला सा आभास मिलना अस्वाभाविक नहीं है। गीतों के अभ्यस्त कानों को कहीं खटका सा भी लग सकता है पर गीतकार जानते हैं कि स्वर मिलाने की चेष्टा में शब्द छूट जाते हैं और शब्द जोड़ने के आयास में स्वर भूल जाता है! पर 'शब्द' के आस्वादी 'स्वर' की भूल पर रुष्ट नहीं होंगे, ऐसा विश्वास है। 'उरबाती में कवियित्री का 'मानसिक चित्र' स्वयं प्रकाशित है। यदि उसमें कहीं धुँधलापन है तो उसके लिये कवियित्री का स्त्रीत्व दोषी है; जो उसमें अदने 'अभिलाषा' का रंग भरने में रह रह सकुचसा भासता है।

सिटी कालेज, नागपुर
महाशिवरात्री २००२ वि.

विनयमोहन शर्मा।

एक लहर.

संतोष, सुख और आनन्द के बहुत निकट रहने की चेष्टा करती हूँ फ़िर भी मौत का विचार मुझे प्रति पल विचलित करता है। क्लान्त, थकित और शिथिल न होते हुए भी मेरे विचारों की श्रृंखला वृद्ध हो जाती है, जीवन की क्षण भंगुरता विराट बन कर मेरे सुख के रोम रोम पर मानो यह लिखती है "यह तेरे लिये नहीं है। इसे छूने की कोशिश न कर, यह तेरे लिये नहीं है।" तब तारों और फूलों पर फैली हुई अपनी आँखें धीरे से उठा लेती हूँ, साधना की सफ़ल घड़ी अभीतक नहीं आई—अशुभ-वेला की अँधेरी घटिका में यौवन गुजरता है, गुन गुनाता है, अपनी कब्र की कल्पना करता है—बूढ़ा होना कितना आसान है। काश! कविता लिखना भी उतना ही आसान होता।

किसी वृद्धा को देखकर मैं कहती हूँ "तुम्हारी उम्र में मैं क्या क्या करलेती? पर—नीचे पानी में पैर लटकाकर कंकड़ियों से नदी के किनारे खेलते हुए शिशु को देखकर सृष्टि के नवीन क्रम में विचार लय हो जाता है।

मेरी एक दाई थी जो मेरे सामने अपने जीवन के नक्शे बनाती रहती थी और मैं उनमें ऐसा विश्वास करती थी जैसे वे सच्ची घटनाएँ हों।

दो युगों के पश्चात जब वह मुझसे मिलने आई तो अपने मनसूबे उसी तरह मुझसे कहने लगी—मैं उसे सुन रही थी और सोच रही थी क्या कोई 'क' से 'ज्ञ' तक अजाने जा सकता है? 'तुम में कोई परिवर्तन नहीं हुआ' मैंने कहा, सिवा इसके कि तुम्हारे बाल सफेद हो गये हैं

"वाह! मेरे बाल—वे कहाँ पके?" साड़ी के नीचे उसका सर लगभग सफ़ेद था। अपने मन की स्फूर्ति और केशों के रंग को कोई नहीं जान सकता!

नदियों में निरन्तर नवीन जल बहता है—जो विचार कललिपि बद्ध नहीं हुआ वह आज खोगया—किसी ने कहा 'जीवन फल में दो घुन लगे हैं, मृत्यु और आगामी कल जब यह सुना तो अपनी आख्यायिकाओंको एक तरफ रख दिया और कलाई की घड़ी में देख कर अपने तईं कहा यदि मैं कल की प्रतीक्षा करूँगी तो कयामत बरपा हो जायगी और कुछ न लिख सकूँगी!

जीवन, द्वार के खुलने और बन्द होने के समान है—और वह हाथ में एक कोरा कागज़ का टुकड़ा लेकर नीले आकाश में द्रुत गति से घूमते हुए बादलों की तरफ देखने में ही निकाला जा सकता है।

आह! हम समझते हैं कि किताबें, जो हमें अमर बनादें, आसानी से लिखी जा सकती हैं। हम अमर बनने की आकांक्षा करती हैं —पुरुष सौगन्ध नहीं लेता, आश्वासन भी नहीं देता कि मैं हमेशा तुम्हें प्यार करूंगा और बिना उस सम्बल के भोली नारी अपनी अमरता खो देती है। मौतके बाद के जीवन

के लिये खुदा अद्भुत वादे करता है किन्तु यदि मनुष्य आधे भी करे तो मृत्यु के पूर्व का जीवन कितना सुन्दर हो सकता है ?

पुरुष सौगन्ध नहीं लेता, आश्वासन भी नहीं देता कि मैं हमेंशा तुम्हें प्यार करूँगा और बिना उस सम्बल के भोली नारी अपनी अमरता खो देती है मौत के बाद के जीवन के लिये खुदा अद्भुत वादे करता है किन्तु यदि मनुष्य आधे भी करे तो मृत्यु के पूर्व का जीवन कितना सुन्दर हो सकता है ?

जब बसन्त आता है तब नारी का दिमाग फिर जाता है और हर वर्ष वह सोचती है कि वह वसन्तोत्सव के लिये हर सुन्दर परिधान बनवायगी किन्तु जिस वासन्ती बाने का वह स्वप्न देखती है वह उसे कभी उपलब्ध नहीं होता वह अप्राप्य है ! घूमे हुए सर से वह सोचती है कि वह काश्मीर, बनारस या ढाका में अवश्य मिल जायगा !

एक बसन्त पञ्चमी को जब मैं वाणारसी की किसी प्रसिद्ध दुकान में खड़ी थी तब तक परिचित आवाज ने मुझसे कहा " सारी उम्र इसी तलाश में गई अब इसे छोड़ अपनी कविता का शृङ्गार क्यों नहीं करतीं ?"

मैं चुपचाप लौट गई आगे एक कागज़ी की दुकान थी। बढ़िया बैंजनी हरे नीले कागज और दिव्य स्याही !

" देख सफ़ेद पर काला ग़जब ढा सकता है ?—मेरी छाया के लिये वासन्ती वस्त्र मिल जायगा पर मेरी काया केवल पिछले वर्ष के भ्रम में ही परिभ्रमण करती रही ! मैं अपने गीतों को रंगीन वस्त्रों से सजाऊँगी और वे—सुदूर तक जाँयगे कोमलतर मन के स्वाच्छाकाश में उड़ेंगे।

छाया हो या काया, सजाना कठिन ही है–फ़बती हुई चीजें का चुनाव सच में कठिन है ! हो सकता है जिस परिधान की कल्पना मैंने अपने भावों के लिये की वह मुझे न मिले हों फिर भी पद्य की ओर बढ़ना—एक परिवर्तन है—और उचित भी है क्योंकि आत्मा पद्य में गाती है। इसका प्रयोजन यह नहीं कि गद्य लिखना आसान है पर यही कि 'कविता' हम जब चाहें तब नहीं लिख सकते !

जीवन एक दिलचस्प कल्पना है और गाना अथवा रोना उसकी उपस्थिति की दो मुख्य अभि व्यक्तियां ! एकान्त मन के मौन में फिरकर कोई लिखता है, आत्मा की आवाज सुन उसकी कातरना में घुलकर उसे व्यक्त करना भी एक तरीका है, मन में आवे वही अचेतना के क्षण में लिख देना, हवाओं की पेंग से हृदय का वातावरण स्वच्छ कर कुछ कहना—दुनियां की गन्दी से गन्दी, अच्छी से अच्छी पगडंडियों पर घूमघूम कर लिखना—वह भी साहित्य ही है–मैं इनमें से किसी भी स्कूल को अपना नहीं कहूँगी सब सुनती हूँ, विश्वास करती हूँ पर स्मृति कोमल है, शायद कमजोर है शीघ्रही भूल भी जाती हूँ।

प्रेम कवियों का चिरकालीन स्वप्न रहा है–उनके विचारोंने उसी परिधि में चक्कर काटे हैं–"वह मुझे चाहता है या नहीं, प्रियतम मुझे भूल तो नहीं गया, इसी कल्पना ने उनके हृदय को ठेस पहुँचाई है पर बाहर—एक बार उस चौरासी के चक्कर से निकल जाने वालों को यह ज्ञात हुआ कि प्रेम से बढ़कर सुन्दर चीज यहाँ है और उन्हें पूर्णतया आकर्षित करने की क्षमता उसमें है। देर, बहुत देर बाद इस सत्य की अनुभूति होती है

कुछ अभागों को तो होती ही नहीं—दुर्भाग्य से यदि किसी ऐसी प्रेरकशक्ति से उलझाव हुआ जिसका कोई स्वप्न नहीं, और न आँख में एक दार्शनिक आईना ही, जिसमें दुनियाँ की रंगीनी का प्रतिविम्ब पड़ सके तब—कल्पना शिथिल हो जाती है।

प्रेमी की नसों में रक्त का ताजा बहाव हो, गोरी रेशमीन चमड़ी से उसका आकार मढ़ा हो परन्तु यदि उसके हृदय में किसी अन्य हृदय का स्पन्दन न आवे, स्मृति उसके बधिर कान में चिल्लाकर भी बाहर अपना प्रतिघोष न ला सके तो कवि का गान अधर में ही रुक जायगा अथवा वह बाहर आया भी तो उसमें समष्टि को कम्पित करने की ताकत न होगी।

मैं कैसे लिखती हूँ, क्या लिखती हूँ, यह ठीक से न बता सकने पर भी यह जानती हूँ कि अभी तक मेरी कल्पना मुझ तक ही सीमित है। फिर भी दुःख और सुख जैसा व्यक्ति का है वैसा ही सृष्टि का। वह शाश्वत है—यही विचार मुझे लिखने का उत्साह देता है, और मैं अपने लिये लिखती हूँ-आदत से लाचार होकर लिखती हूँ। वही लिखती हूँ जिसे लिखे बिना जीवन असम्भव नहीं तो कठिनतर अवश्य हो जायगा! अनेक दुविधा द्वन्द्व और आशंकाएँ होते हुए भी मुझे जीवन से भयंकर अनुराग है और उसी को सुवासित और जागृत रखने के लिये यह उपक्रम है।

अरस्तू कहता था " Goodness is knowledge-secret of success in life is to have clear and true ideas about it " कवि कहता है कविता की सफलता दुःख की

करुण अनुभूति में है। घाव जितना ही गहरा होगा वेदना उतना ही स्पष्ट और धीरे-धीरे व्यापक होती जायगी और मनुष्य ऊँचा उठता जायगा। कवि संसार का सबसे सबल शिक्षक और प्रेरक है! क्योंकि मानव हृदय के उस अँधेरे जंगल में जहाँ सभी सूर्य चमक कर अस्त हो गये हों और उस कालिमा के हटने की कोई आशा न हो, वहाँ भी वह आसानी से पहुँच सकता है—सम्भव है कुछ दिन उसका गीत उसी अंधेरे में खो गया सा प्रतीत हो, पर उस मृत्यु के घर से भी आवाज निकलती है, दिन ऊगता है, और मरे हुए भाव क्रियाशील बन जाते हैं। इसीलिये लेखक को एक विचित्र खुशी और शान्ति अपनी कृति को देख कर मिलती है—"किताब कोई भी लिख सकता है, यह सबसे आसान काम है" इस तरह की कई बातें आलोचनाएं- सुन कर भी वह जीवन के भार को सहन करने की स्फूर्णा लेने के लिये फिर से लिखता है। लोगों के दिल में एक कोमल स्मृति छोड़ जाने का मधुर ख़याल कलम की सांस ख़तम होने तक उसे चुप कहाँ होने देता है!

३ मार्च ४६ } दिनेशनन्दिनी

आज मेरे भाग जागे।

चिर उषा अवसान जागे, मृदु आँसू प्राण जागे
खो गये जो अस्त सपने जी उठे पा प्रिय-पुलक घन
काँपता है प्राण में अब चिर तुम्हारा मधुर चिन्तन
चिर विदा वियोग मेरे चिर सुहाग अधीर जागे
आज मेरे भाग जागे।

देख तव दृग नील नभ मे खुल गये हैं पलक-बन्धन
मूक अधरों में रमा मंदाकिनी सा प्यार चिरन्तन
जगत सीमाबद्ध, किन्तु सिन्धु असीम आगे
आज मेरे भाग जागे।

पुतलियों में हास आया, पलकों मधु मोद छाया
'प्रिय-दरस' से मुग्ध कण-कण गान गीले जग सुहाया
श्रम मिटा श्रृङ्गार उज्ज्वल, चिर अभागे भाग जागे
आज मेरे भाग जागे।

आज प्रिय ! स्वच्छन्द हूँ मैं, मोह का टूटा सहारा
आज पीड़ा-मुक्त हूँ मैं आज उज्ज्वल पथ हमारा
अब न होगी जय-पराजय, तुम्हींमय हो प्राण जागे
आज मेरे भाग जागे।

(२)

बुझ गई आली, शमा, परवाना अब भी घुल रहा है।
चिर सत्य उसकी चेतना का फूल मानों खुल रहा है।
आँख का अनमोल सपना हिमकणों से धुल रहा है।
मृत्यु के सम इङ्गितों पर बोल उसका तुल रहा है।
दूर तारों से झलक कर कौन मुझ को है बुलाता?
अब न मुझ को जग सुहाता!

क्षितिज के उस पार स्वागत गीत कोई गा रहा है।
मोह रजनी तम दुहेरा तोड़ कोई जा रहा है।
किस सुयश की प्रेरणा-सा पास कोई आ रहा है।
काल सा बादल बना हा, चाँदनी पर छा रहा है।
जानती हूँ ज्वार यौवन का रहेगा सर धुनाता।
अब न मुझ को जग सुहाता।

मैं युगों से मौन थी पर आज से कुछ और होगा।
सुमन-शर-संधान में अब साधना का जोर होगा।
साँस के सूने पटल पर अब न केवल शोर होगा।
प्रलय का झंझा कहाँ? यह तो प्रणय का भोर होगा।
मूढ़ मन समझा रही उद्वेग सा उर में मचाता।
अब न मुझ को जग सुहाता।

पुहुप पल में झड़ गया, पर प्राण जगती में समाये।
गरल पीकर भी धरा ने अमरता के गीत गाये।
बुझ गयी 'लौ' अब हृदय में कौन वह आलोक लाये?
सर्वस्व खो कर ही सही इस जिन्दगी का मोल पाये।
देखती हूँ मिलन-पथ हँस हँस मुझी को है रुलाता।
अब न मुझ को जग सुहाता।

हे अमर धन ! ठहर पल भर गन्ध में मिल आ रही हूँ।
किरण-झुरमुट से निकल चिर चेतना चमका रही हूँ।
रम स्वयँ घट-घट जगत के भेद सारे ला रही हूँ।
कर्म-बन्धन शिथिल कर मैं चिर मिलन को आ रही हूँ।
मौन का अभिसार आली, अब मुझे मुखरित बनाता।
अब न मुझको जग सुहाता।

(३)

सखि, चिता सी जल रही है।

कौन कुन्तल कृष्ण खोले, अधर चुप—पर नयन बोले
क्षितिज के उस पार वह, काली-घटा सी घुल रही है!
साँस निशि की रुँध रही है, काल कलिका मुँद रही है
स्निग्ध मलजय मेघ में, अँचल डुला कर मल रही है!
सखि चिता सी जल रही है!

रँग भरी सूरज शिखायें, पाप सी कुण्ठित दिशायें
मूक यौवन की गिरा अब स्पन्दनों में पल रही है!
ताड़ तरु उर डोलता है, यम यमी से बोलता है
छोड़ 'जगते' स्वप्न को, जगती सदा से चल रही है!
सखि, चिता सी जल रही है!

---

(४)

क्यों अजाने बह रही हूँ ?
अकथ गाथा कह रही हूँ ?

रूप के उद्दाम ज्वर में, क्षणिक मोहक मदिर स्वर में;
दैव के उजले दृगों से, स्वेद सी मैं ढह रही हूँ ?
क्यों अजाने बह रही हूँ

मृत्यु-मानस बोलता है, गाँठ 'भव' की खोलता है;
तड़पता है प्राण—पंछी, मुसकुराकर सह रही हूँ ?
क्यों अजाने बह रही हूँ ?

महकती स्वप्निल निशानी, आज सुन मेरी कहानी;
रूठते हैं शब्द मुझसे, पर सँवर कर कह रही हूँ !
क्यों अजाने बह रही हूँ ?
अकथ गाथा कह रही हूँ ?

(५)

जीवन की उखड़ी श्वासों को क्षण भर ही बहलाऊँ।
प्यारी आँखों में पानी भर किसको राह दिखाऊँ ?
धुँधला ही चित्र बनाऊँ।
किसे दीप दिखलाऊँ ?

तू प्रकाश का तोष और मैं तम पीकर जीती हूँ।
मधुर हँसी की याद लिए मैं निशिदिन ही रोती हूँ।
पथ-सीमा से टकराऊँ।
किसे दीप दिखलाऊँ ?

वे दिन कितने सुन्दर थे लख मुख तेरा रहती थी।
प्राणों में प्राणों को भर निज प्रणय कथा कहती थी।
किसकी राह सजाऊँ।
किसे दीप दिखलाऊँ ?

(६)

तिल तिल यह दीपक जलता है।
जीवन के लिए मचलता है॥

ये मौन अधर कुछ बोल रहे, दुख की रेखा से डोल रहे,
अनजाने पथ की सीमा पर आँखों का आज छलकता है।
तिल तिल यह दीपक जलता है॥

फूलों की चटकी आशा में, तारक गीतों की भाषा में,
सिर धुन धुन कर कुछ कहता है, फिर भी कैसी विह्वलता है!
तिल तिल यह दीपक जलता है॥

प्राणों में दर्दिल आह लिए, सूनी-सी बेबस चाह लिए,
अपनी ज्वाला में प्रतिपल जल, यह तम-चूर्ण उगलता है।
तिल तिल यह दीपक जलता है॥

पलकों में कुछ अटक गया है, अरे अपरिचित भटक गया है।
मलयज के आघात सहनकर, निशिदिन अवसाद तलफता है।
तिल तिल यह दीपक जलता है॥

दम घुटता है, घबराहट है, किसके पैरों की आहट है?
जगती से रूठे जीवन पर, बरबस नेह छलकता है।
तिल तिल यह दीपक जलता है।

---

(७)

पुलकसा यह प्यार तेरा !

क्यों प्रतीक्षा के पलों में पालता है उर अँधेरा ?
क्यों किसी के आँसुओं से सींचता बन पथ अबेरा ?
सुमन सा यह प्यार तेरा !

तोड़ संयम-शृंखलायें, साधना सा आ रहा है,
या किसी के दृग-पटल पर प्रलय-घन सा छा रहा है।
हेरता संसार मेरा
महकता सा प्यार तेरा !

काल ही तेरे प्रणय का फैसला अब कर सकेगा।
या सिसकती वेदना से प्राण अपने भर सकेगा !
कसकता जीवन-सबेरा
काँपता सा प्यार तेरा

(८)

यों ही अब तक छली गई,

चुपके से सन्ध्या आती थी, मेरा मन उलझा जाती थी,
पर न कभी रूठे कपाल पर कुंकुम रोली मली गई,
यों ही अब तक छली गई !

जीवन-तरु की मृदु डालों पर, उलझन के बिखरे जालों पर,
आँखों के जलते शोलों पर किस की रुझान हो चली गई।
यों ही अबतक छली गई !

कौन अचानक आया था, फिर धूप-छाँह सा छाया था
कुछ थोड़ा सा शरमाया था, पलकों में आशा पली गई।
यों ही अब तक छली गई !

(९)

दुर्भाग्य की दुर्गम घड़ी है।
इस पार सखि ! पीड़ा बड़ी है ॥

'सोहाग' मेरा रूठता है जी धड़क, दम टूटता है।
बुझ रही आँखें अकिञ्चन, पर किसी को क्या पड़ी है ?
दुर्भाग्य की दुर्गम घड़ी है ॥

वज्र-सोता फूटता है, संसार मेरा लूटता है,
कान में क्या सुन रही 'यह गीत की अन्तिम कड़ी है' ?
दुर्भाग्य की दुर्गम घड़ी है ॥

है व्यर्थ अब मेरी समीक्षा, लो आज होगी ही परीक्षा।
हो गया अवसान सुख, पर धूप यौवन की चढ़ी है।
दुर्भाग्य की दुर्गम घड़ी है ॥

(१०)

माझी ! हौले हौले खे रे !

क्या न कभी यह संभव होगा वे आयें घर मेरे ?
जलती हूँ मैं दीप-शिखा सम सूना शाम-सबेरे।
माझी ! हौले-हौले खे रे !

डगमग नाव करे 'नदिया' में है प्राणों को घेरे।
लहरों के झूलों पर किसके मन में उठीं हिलोरें ?
माझी ! हौले-हौले खे रे !

हहर रहा झंझा यौवन का कौन यहां अब हेरे।
मान-मछली के मोती को दृग-डोरे में पो रे।
माझी ! हौले-हौले खे रे !

(११)

प्रतिपदासा कौन रोता ?

चेतना का दीप रे चुप भूमि-तलपर कौन सोता ?
प्रेरणा की पलक पंखुरि में हँसी सा रुदन खोता !
प्राण का प्रतिरोध कर चिर प्रीति का नव पुष्प बोता !
चाहती हूँ देख लूं स्वप्निल नयन मोती पिरोता !
प्रतिपदासा कौन रोता ?

जानती है जग अथिर; फिर बुन्द मधु में पर भिगोता !
है कठिन प्रण, सहज जीवन व्यर्थ क्यों जल क्षार होता ?
प्रतिपदासा कौन रोता ?

(१२)

कौन यह मुझको बुलाता ?

हर घड़ी संकेत करता, हर घड़ी आँधी उठाता,
रूप की बदली बना सा, कौन प्रतिपल पास आता ?
कल्पना के गीत गाता—
कौन यह मुझको बुलाता ?

चल पड़ी हूँ भँवर में, क्यों हृदय मेरा काँपता है ?
चाहती उस पार जाना, धैर्य मेरा हाँफता है !
देखती आतिश उड़ाता !
कौन यह मुझको बुलाता ?

पहन रण परिधान पथ में, कौन पल-पल बाट जोता
छिन्न सारे स्मृति-स्वरों में मौन के तारे पिरोता
कौन रे सन्देश लाता ?
कौन यह मुझको बुलाता !

(१३)

भूल का आसव पिलाती।

यह सिसकती काँपती-सी आज किसकी याद आती ?
किस परिधि से निकलकर यह गूँजती आवाज़ आती ॥
देख रिमझिम रात आती
भूल का आसव पिलाती।
हेर सारे वन-पवन को जब हृदय में मुँह छिपाती।
प्रेरणा के प्राण-सी तब कौन वंशी-रव सुनाती॥
फूलसी कुछ गुनगुनाती
भूलसी आसव पिलाती।
गीत की अंतिम कड़ी-सी शिथिल सपनों में समाती।
रूठती फिर मचलती-सी रूपसी आँसू बहाती।
चेतना—सी गुदगुदाती
आज किसकी याद आती ?

(१४)

मुझको न किसी ने किया प्यार ?

अँधियाली के आँचल में, यौवन के महा हिमाचल में।
उर्वरमन के आँगन में, चिन्तन ही मेरा चिर अधार।
मुझको न किसी ने किया प्यार ?
सौन्दर्य-शिखा वह जलती थी, आशा यह पल पल छलती थी
रजनी के नीरव नयनों में निरखी थी अपनी सलज हार।
मुझको न किसी ने किया प्यार ?
दुस्सह इच्छा का करुण भार, प्रेम-जगतका प्राण-सार।
प्रहरी-सी जग कर भी मैंने लुटा दिया सुरभित संसार।
मुझ को न किसी ने किया प्यार ?

(१५)

किसने तुझसे प्यार किया ?

नीली पलकों की प्याली में आसव का उपहार दिया !
सोने के मूर्छिल सपनों पर जीवन का मधु ढार दिया !
क्यों कल्पित शृंगार किया ?
किसने तुझसे प्यार किया ?

किस पाषाणी प्रतिमा से मृदु स्वर उड़ तेरे टकराये ?
स्मित सरोज से हिमकण झर तेरे नयनों में लहराये ?
भावों का उपचार किया !
किसने तुझसे प्यार किया ?

गीतों की कड़ियों में बँधकर, सुधि किसकी बरबस आई ?
यह न कभी तू जान सकेगा रो आई या हँस आई।
पीड़ा का प्रतिकार किया ?
किसने तुझसे प्यार किया ?

(१६)

अब न मुझे जीना भाता है।

अपनी ही छवि को दुलराती, सुलझन को रह रह उलझाती,
पथ पर नज़रें हैं बिछ जातीं, साँसों से बाती बुझ जाती,
कौन अजाने ही आता है ? अब न मुझे जीना भाता है।

२

अपने ही गीतों को गाती, मैं ही उनको हूँ सुन पाती।
मूक-भार से दबती जाती, स्पन्दन में ही पिय पा जाती।
कौन 'मोहिनी' भरजाता है ? अब न मुझे जीना भाता है।

३

अश्रु भीगी रात आती, पलक में तूफ़ान लाती।
पुलक के अम्बार छाती, बीन स्वर में प्यार गाती।
क्यों उर से वह टकराता है ? अब न मुझे जीना भाता है।

(१७)

बाँसुरी-सी बज रही है !

पाँव में माहुर लगाए, श्रवण श्रुतियाँ गुनगुनाए
आज मेरी मौत युग के अश्रुओं से सज रही है
बाँसुरी-सी बज रही है !

गगन के तरु-पुष्प तोड़े, आर्द्र-शीतल सुमन मोड़े
चरण छू बलिदान के, निष्ठुर मिलन भी तज रही है
बाँसुरी-सी बज रही है !

होमसी जलती दिशायें, निर्झरों में
विप्रलब्धा वंचिता मुग्धा, लता सी लज रही है
बाँसुरी-सी बज रही है !

उग्र सपनों की 'कृती' पर, वेदना-विह्वल 'धृती' पर
चाँदनी के सार से, जीवन-अँधेरी मँज रही है
बाँसुरी-सी बज रही है !

(१८)

भाग्य मेरा सो रहा है !

या प्रणय के गहन बन में, वेदना के विपुल तन में,
पुष्प-वेष्टित तरु लता पर गीत बन कर खो रहा है।
भाग्य मेरा सो रहा है !

२

गगन-पथ के शरद घन में, चन्द्रिका के ऋतु सदन में,
पाप के घुलते हृदय पर, 'पुण्य'-सा वह रो रहा है।
भाग्य मेरा सो रहा है !

३

आर्द्र आँखों के पलों में, मोतिया-मंजुल दलों में,
इन्द्र-धनुषी अग-जगत के सान्ध्य-सपने धो रहा है।
भाग्य मेरा सो रहा है !

(१९)

मैंने दुख को ही दुलराया,
जीवन आँसू भर भर लाया,
यौवन की उजड़ी घड़ियों में,
आशा की टूटी लड़ियों में,
बँधा कौन खिंचता सा आया ?
कब मैंने किसको भरमाया,
अपने दुःख को ही दुलराया !
साँझ हुई, रजनी घिर आई,
पलकों में पावस भर लाई,
नभ में शीतल आग लगाई,
इसका भेद किसे बतलाया ?
अपने दुःख को ही दुलराया !
बिन बेधे कलिका मुरझाई,
मन ही मन सुधियाँ शरमाईं,
दुःख से मैंने होड़ लगाई,
अपनी बीती कब सुन पाई,
कब सहमी सूनी मजार पर,
सुख ने आकर दीप जलाया,
मैंने दुख को ही दुलराया !

---

(२०)

जब रहे प्रिय पास मेरे

मोतियों का मेह बरसा, साधना का प्राण सरसा
कब सा दुख चुप रहा, अब साध ने भी नयन फेरे।
जब रहे प्रिय पास मेरे।

बोलती कोकिल वनों में, कौंधती विद्युत घनों में
सुरभि से संसार भीना, खिल उठे संध्या-सवेरे।
जब रहे प्रिय पास मेरे।

साँस में सजते सपन थे, चित्र बनते में मगन थे
दीप जलता था चिरन्तन, मन रहा 'आलोक' घेरे।
जब रहे प्रिय पास मेरे।

गीत था मेरे स्वरों में, 'लास' यौवन के परों में
भाग्य हँसता था निरन्तर, निरख मेरे सुख घनेरे।
जब रहे प्रिय पास मेरे।

(२१)

कैसे तुझे मनाऊँ ?

समझ न पाती खुद रूठूँ या बैठ तुझे समझाऊँ।
अपनी हस्ती तुझ में खोकर मेरा नाम मिटाऊँ ?
किन गलियों से आऊँ ?
कैसे तुझे मनाऊँ ?

कब तेरे नयनों में नीरव सन्ध्या—सपन सजाऊँ।
खञ्जन सी उड़कर मैं तेरी मौन हँसी बन जाऊँ ?
तेरा स्वर बन गाऊँ।
कैसे तुझे मनाऊँ ?

यह न कभी भी सम्भव होगा, मैं तेरी कहलाऊँ।
पर कोई कैसे रोकेगा, यदि पुलकों में आऊँ ?
तेरी मञ्जिल बन जाऊँ।
कैसे तुझे मनाऊँ ?

(२२)

घोरतम छाया उदासी चल रही है,
मोह सी मृग-जल प्रतीक्षा पल रही है।
वेदना सोई वियोगिन जल रही है,
यह निगोड़ी 'चुप' मुझे अब खल रही है।

२

साँस में अवसाद रञ्जित एक पल है,
अधर पर है गान, आँखों में प्रलय है।
प्राण अब मत रूठना सुनसान पथ है,
आरहा अवधूत आहों में मलय है।

३

स्वप्न का सुन्दर समा लख काँपती हूँ,
सुमन-तन शैया शमा सी नापती हूँ।
ज्योति किसकी आँख में यह हिल रही है,
मृदु निशा अनुभूतियों से मिल रही है।

४

कौन अब फिर कान में कहता कहानी,
प्रेम के मृदु छन्द की भूली निशानी
कौन ध्वनि यह गूँज मेरे कान जाती ?
मैं स्वयँ को भी नहीं पहचान पाती।

(२३)

मैं अकेली पथ अँधेरा, पिय कहाँ यह कौन जाने !
जल रही प्रतिपल शलभसी, विरह-मृत्यु, कौन माने ?

२

मैं न होऊँगी धरा पर, हर अधर पर गान होगा !
यह दीप भी बुझ जायगा, हर हृदय अभिमान होगा !

३

कल्पना की सेज पर मेरा, मनोरम स्वप्न होगा।
गगन के उसपार साकी-का सभा सा प्रेम होगा।

४

साँवली सी रात में जब, प्रात का स्वर मौन होगा !
तप्त गीले आँसुओं को-पोंछ दे वह कौन होगा ?

५

मधुर पथ को खोज लेने-का सभी अन्दाज़ होगा,
रूठ कर बैठे न कोई, क्यों छिपा कुछ राज़ होगा ?

६

पलक में सपने पलेंगे, नैन में रति-रास होगा।
उदधि के उनमन हृदय पर, उर्मियों का हास होगा।

७

लाज उलझी रश्मियों के प्रणय बन्धन मुक्त होंगे।
मृदुमान से घूँघट उठा, हंसते हठीले कौन होंगे ?

८

'आज'-'कल' की लय परिधि में, संसार की सारी व्यथा है।
मिलन सीमा बद्ध है पर, निस्सीम में जीवन वृथा है।

(२४)

आज मेरा पथ अकेला, आज आकुल गान मेरे।
सो गई आशा अमर-धन, रह गया अवसान मेरे।

२

अब न सपनों में लजीले, मान से शृङ्गार होगा।
अब न प्याली में बचे, आसव कणों से प्यार होगा।

३

मौन की रंगीन घाटी—में खगों का स्वर समाया।
अब न मानेगा हठीला—मन, उसे कितना मनाया।

४

सांझ के श्यामल परों पर, काल की दुर्गम घड़ी है।
सहमता है दीप सजनी, मौत ओठों पर अड़ी है।

५

कनक रेशम कुन्तलों में, मोतियों का साज होगा।
अब न सस्मित दृग-पटल पर, आँसुओं का राज होगा।

६

मेघ में संचित सुधा है, पर न मधु बरसात होगी।
गीत में स्वप्निल मदिर भर, कब सुहागिन रात होगी?

७

मौनकी संगीत तानों, में सचेतन वास होगा।
अब न प्रति पल प्रिय प्रतीक्षा, हर घड़ी वह पास होगा।

८

अब न मुखरित रैन होगी, अब न वह अभिसार होगा।
अब न होगी चार आँखें, अब न जीवन भार होगा।

९

शून्य सा है पथ अकेला, किन्तु तन्मय गान मेरे।
सोगई आशा चिरन्तन, रह गया अवसान घेरे।

(२५)

लाचार हूँ मैं,
जन की मर्यादा छोड़ चुकी, मैं अपनों से मुँह मोड़ चुकी
जीवन के जलते पथ पर, यौवन का शिष्टाचार हूँ मैं।
लाचार हूँ मैं।
निशि को आँसू से नहलाती, मुरझाया मन मैं बहलाती,
साँसों से हिलते दीपक का, हल्कासा उपचार हूँ मैं।
लाचार हूँ मैं।
उर में धीमा सा स्पन्दन है, आँखों में आकुल क्रन्दन है
अभ्र शुभ्र हिम-चट्टानों पर, बिछला सा उनका प्यार हूँ मैं।
लाचार हूँ मैं।
भीगे भावों को पीस दिया, प्राणों के पद में शीश दिया।
यह स्निग्ध मौन उनके अधरों पर घुलता सा सुविचार हूँ मैं।
लाचार हूँ मैं।

(२६)

तारों की तड़पन हो तुम, या जूही के मधुर हास ?
गजरों के कोमल बन्धन, या मधुवन की सुरभित साँस ?

२

जटिल ग्रन्थि हो जीवन की, या कलियों का कोमल बन्धन ?
उलझे कुन्तल विजन बाल के, या वसुधा का सम्मोहन ?

३

प्रथम मिलन की मादकता हो, या विछोह का मधु कम्पन ?
सिन्धु-हृदय की चंचल लहरी, या भावों का शुचि मन्थन ?

४

जर्जर अञ्चल के प्रसून हो, या नारी की आतुर चाह ?
मानस-पट की चेतन प्रतिमा, या हो उसके उर की थाह।

(२७)

तुम मुस्काये मेरे मन में—
प्राणों के सुरभित उपवन में।

वह स्वप्न हीन थी एक रात, जिसमें मूर्छित थे मधुर प्रात।
करते थे रह रह कौन बात ? परियों से होता आत्मसात
तुम मुस्काये मेरे मनमें—
प्राणों के सुभिरत उपवन में।

अविरत इच्छा के सूने पल, अर्चित पुष्पों के चुम्बित दल।
बन्दी होता था स्पन्दन साँसों के 'परिरम्भन' में।
तुम मुस्काये मेरे मनमें।
प्राणों के सुरभित उपवन में।

पुतली के कोमल पर्दों पर, चल चित्र खिंचे जाते थे।
रुमझुम पायल बजती थी, नवरास रचे जाते थे।
झर झर आँसू झरते थे, भावों के उत्पीड़न में।
तुम मुस्काये मेरे मनमें।

(२८)

देखती हूँ शून्य में, कोई नज़र आजाय मेरा।
मैं समय से जूझती हूँ, आँख में छाता अँधेरा।
क्षितिज के रंगीन पट पर, भाग्य-छवि को आँकती हूँ।
नखत के वातायनों से, विधि हृदय को झाँकती हूँ।
विधुर मन की रात में, दुख द्रुमों पर डोलता है।
कौन चढ़कर इन पलक पर, नींद के स्वर खोलता है ?
नयन में बाती सँजो कर, आरती के गीत गाती।
पर न मैं होती किसी की, कौन अपना खोज पाती ?

(२९)

किसने शव का शृङ्गार किया ?
निभृत पथ पर पुष्प बिछाये
शान्त स्थलपर 'दीप' जलाये
अगर धूप कर्पूर उड़ा कर—
प्राणों का आह्वान किया
क्यों शव का शृङ्गार किया ?

२

रत्न – राशि से रोम सँवारे
अधरासव पीता बनजारे
स्तंभित ये नयनों के तारे
मृत्यु शोक-स्पन्दित गृह द्वारे
चल चित्रों से प्यार किया
क्यों शव का शृंगार किया ?

३

धूमाङ्कित निशि के अँधकार
काली आँखों के बन्द द्वार
जल उठता 'माणिक' बारबार
वन्ध्या यौवन का विरल सार
चक्षुहीन ? अभिसार किया
क्यों शव का शृंगार किया ?

४

मुक्त प्राण खोया चन्दन बन
मुग्ध स्वप्न सा मरु का रजकण
चिर जीवन आशा ही चिर–धन
विष—वीणा संचार किया
क्यों शव का शृंगार किया ?

(३०)

मेरा ही मन मुझको खाता।

छद्ममयी छाया के पीछे, अर्चित लघु वेदी के नीचे।
कम्पित कौतुक सा कुछ आता, मेरा ही मन मुझ को खाता।

२

पाप पुण्य की करुण कल्पना, प्रणय-स्मृति की मौन जल्पना।
जीवन निशि की साँस गिनाता, मेरा ही मन मुझ को खाता।

३

पल पल दबता है मधुर भार, प्रणय-ग्रन्थि कोमल सुकुमार।
'धूँए' का बादल बन आता, मेरा ही मन मुझ को खाता।

४

मन ही मन झुँझला जाती हूँ, दृग-तारों में छुप जाती हूँ।
प्राण परिधि प्रावृट सा आता, मेरा ही मन मुझ को खाता।

(३१)

किसने मुझे जगाया ?

सागर के निष्कम्प अधर पर, किसने दीप जलाया ?
किसने मुझे जगाया ?
इस लाज भरे घूँघट में, यौवन का राज़ समाया,
अनिमेष आँख रोती है छूकर सपनों की छाया।
रह रह कर छन्द बदलते, कविता की कोमल काया।
जीवन के गुप्त कणों में, किसका विषाद हर्षाया ?
मैं पथ जब छोड़ चुकी थी, पीड़ा के स्वर में गाया।
मैं समझ न पाई थी कब वह आँसू बनकर आया ?
किसने मुझे जगाया ?

(३२)

प्राण ! चलो उस पार,
क्षिति अधरों पर पुष्प बिछे हैं, उर तंत्री के तार खिंचे हैं।
विवश आज अनजान बटोही—मान भरी मनुहार !
प्राण ! चलो उस पार,

२

निशि वासर दीपक जलता हो, महा मिलन की आतुरता हो।
जीवन—वीणा के छिद्रों से—,बहती आँसू—धार।
प्राण ! चलो उस पार।

३

पुण्य-किरण में चिर कम्पन है, अभिलाषा-मन में मन्थन है।
कजरी बन घूमिल सुधियों में, सोई किसकी हार ?
प्राण, चलो उस पार।

४

मेरी इन गीली आंखों में, यौवन की उजली पाँखों में।
प्रतिबिम्बित छवि का करुण भार, आकुल प्राणों सार।
प्राण, चलो उस पार।

(३३)

कुसुम के मधु तन्तुओंसे प्रीति मेरी कस रही है।
या किसी के करुण रस में आँख मेरी बस रही है !
डूबती यौवन अमा भी पलक पथ में फँस रही है।
नियति का घूँघट उठाकर अवधि सी वह हँस रही है !
आज क्यों आशा मिलन की विवश होती जारही है !
ज्वार सी चढ़ती उतरती कपकपी सी आरही है।
मन्दिर पीड़ा ले प्रतीक्षा प्रलय से टकरा रही है।
सिहरते से मौन उर को तरलता ही भारही है !

(३४)

छली गई रो भी न सकी !

उनके आने का आतुर पथ आँखों के रस से धो न सकी।
उन रूखे काले बालों में स्मृतियों के मोती पो न सकी।
छली गई रो भी न सकी !

वे आये थे उन्माद लिये झर झर करता सा प्यार लिये।
सोन जुही की आँखों में अपना नन्हा संसार लिये।
कुछ भार भरा उपहार लिये कुछ अभिषापों की आग लिये।
उन जलते अंगारों पर थोडा सा मधु ढार सकी ?
मैं उसको पहचान सकी ?
छली गई रो भी न सकी !

(३५)

आज मैं जी भर भर रोलूँ !

असह्य नियति की लहरों में कब तक रह रह डोलूँ।
आशा से उलझे सपनों की श्यामलता धोलूँ।
प्यार को प्राणों से तोलूँ !
आज मैं जी भर भर रोलूँ !

पी यौवन के घूँट प्राण में मनमानी बोलूँ।
मुर्झाये अस्फुट अधरों में मादकता घोलूँ।
स्वप्न को आँसू से धो-लूँ !
आज मैं जी भर भर रोलूँ !

बुझे हुए मरकत दीपों को तारों से जोलूँ।
बता सखे, सदियों के बन्धन कैसे पल में खोलूँ ?
हठीले तुझ सी ही हो लूँ।
आज मैं जी भर भर रो लूँ।

(३६)

कौन वह मुझको बुलाता ?

हर घड़ी संकेत करता हर घड़ी आँधी उठाता।
रूप की बदली बना सा कौन प्रति पल पास आता !
कल्पना के गीत गाता।
कौन वह मुझको बुलाता ?

चल पड़ी हूँ भँवर में क्यों हृदय मेरा काँपता है।
चाहती जब पार आना धैर्य मेरा हाँफता है।
देखती आतिश उड़ाता।
कौन वह मुझको बुलाता।

पक्ष रण परिधान पथ पर कौन पल पल बाट जोता ?
छिा सारे स्मृति-स्वरों में मौन के तारे पिरोता।
कौनसा संदेश लाता ?
कौन चुपके से बुलाता ?

(३७)

यह कैसा उल्कापात हुआ ?

जाग उा मधु-शाप और अभिलाषा ने आँखें खोलीं।
असह्य आ हिम तार मौत के पंछी ने पाँखें खोलीं।
नभ में ई पुकार निरन्तर विधि मेरा उत्पात हुआ।
यह कैसा उल्कापात हुआ ?
स्वप्नों की अब मिचौनी थी क्या होनी थी ? अनहोनी थी ?
उरस्थली के तारों में अन्तर की थिरकन लोनी थी।
शीतल ज्वालाओं होली में हारा यौवन, मेहमानी थी।
शिवके कम्पितओठों से जग का ' सरजन ' भी मात हुआ।
! कैसा उल्कापात हुआ ?

(१८)

शून्य दिशा है भूला पथ है,
अन्धकार क्या पावन होगा ?
पीड़ा में भ्रम है, मदिरा है,
टीस भरा यह यौवन होगा ! २

इस ओर सुधा मिश्रित विष है,
जीवन भर जलना ही होगा।
पीड़ा में भ्रम है मदिरा है,
३ टीस भरा यह यौवन होगा !

आशा में क्लान्त पिपासा है,
आँसू का अवलम्बन होगा।
अमर प्रतीक्षा विधुर हास है,
फूलों सा बस झड़ना होगा ४

सुन्दर शैशव जीर्ण व्यथा है,
भावों का मृदु बन्धन होगा।
निष्प्राण म्लान संचितवन है,
टीस भरा यह यौवन होगा।

---

(३९)

क्या इस दुख का अन्त न होगा ?—
प्राणों की अलसी अवनी पर,
चातक की नव नव चाहों पर.
क्या मेघों में वाष्प न होगा ?
क्या इस दुख का अन्त न होगा ?— २

साधक के जीवित सपनों में,
शैशव के इस सूनेपन में,
रजनी के नीरव नयनों में,
फिरसे ज्योति मयंक न होगा?
३ क्या इस दुख का अन्त न होगा?—

शुचि समीर के मुक्त हास से,
कोकिल के मधु स्वर विलास से,
शेफ़ाली की सफल साध से,
वर वसन्त का बोध न होगा?
क्या इस दुख का अन्त न होगा?— ४

अधरों में आशा अटकी है,
पीड़ा में पावस की ऋतु है
जीवन की बीती तड़पन है ,
क्या सरिता में कम्प न होगा ?

(४०)

कौन प्रिय पूछेगा मृदु बात ?
सरल चितवन नवनीत गात ।
नवल कालिकायें नव नव पात ॥
श्रृंखला बद्ध सुहागतम रात ।
दूर रे दूर मिलन का प्रात ॥
कौन अब पूछेगा मृदु बात ?

२

मृदु भ्रान्त प्रणय आशा सा भार ।
कठिन यौवन के शत श्रृङ्गार ॥
हृदय पर होता कठिन प्रहार ।
आँख जब उठती है उस पार ॥
मौन होता मन बारम्बार ।
प्राण में छाई रिमझिम रात ॥
कौन प्रिय पूछेगा मृदु बात ?

३

सरस जीवन पर दूभर नेह ।
सरसता बरबस आता मेह ॥
प्रतीक्षा शिथिल बना है गेह ।
पलक से छलका पड़ता स्नेह ।
चाँद सी चमकेगी जब रात ?
कौन तब पूछेगा मृदु बात ?

४

पिपासित पीड़ाका है अन्त ?
गहन बन निस्तल नीरव पन्थ ।
सिसकता सूना यौवन वृन्त ।
कभी लौटेगा क्या वह ? हन्त !
रूपसी रूठेगी मिल रात ।
कौन प्रिय पूछेगा मृदु बात ।

(४१)

पूछ रहे क्यों मेरा परिचय ?
मैंतो जीवन की नादानी !
आंखों का पल ढलता पानी ।
अर्ध निशा का कँपता सा भय ।
पूछ रहे क्यों मेरा परिचय ?

२

गत यौवन का करुण चित्र हूँ ।
छिन्न हृदय की मग्न माँग हूँ ॥
मुर्झाये फूलोंका हास ।
और प्रेम की रुंधती सांस ।

३

उपवन की उजड़ी आभा हूँ ।
पीड़ित उर को विजन व्यथा हूँ ।
रामा का हूं मटमैलापन ।
खिली कली का चिर गुम्फन ।

४

पूछ रहे क्यों मेरा परिचय ?
मैं हूँ न किसी की पहचानी ।
सलज प्रेम की जिज्ञासा हूँ ।
मनु--रहस्य की दीवानी ॥

(४२)

आज मैंने प्रतीक्षाको फूलों का शृंगार कराया।
आज मेरे यौवन ने उन्मुक्तहोकर गान गाया।
आज मेरी प्रेरणा में लहरियों सा मान आया।
आज मेरे दृग—युगल में हिम कणों का ज्वार आया।

२

इन्द्र—वधुओं की रगों में कौन सा उन्माद छाया,
आज मेरे चिर प्रणय में वेदना का भार आया।
मौन मधुमय वाच्छना में सहज ही उपहार आया।
आज मेरी पुतलियों में प्रलय का आव्हान आया।

३

तुम न आये, कौन आया? विषभरा संकेत लाया।
' मूर्छना के रुदन ' में संजीवनी का हास छाया।
भ्रान्तियों के अचल सपनों में जगत का भार आया।
आज लहरों के हृदय में उनमना उल्लास छाया।

४

यौवन की व्यापक व्यथा में पतझड़ों का कम्प आया।
आज अन्तर ज्वाल को उद भ्रान्त होना क्यों सुहाया?
उस नशीली नीलिमा मे तापका आतंक छाया।
आज मेरे लोचनोंमें हिमकणों का ज्वार आया।

५

उदधिके विश्राम स्थल पर पहुँच कर मैंने बुलाया।
आज सोई स्मृति—सुधा को स्वप्न से मैंने जगाया।
उस असाधे तार को फ़िर साध कर मैंने बजाया।
आज वर्षा में कहाँ से विहँसता मधुमास आया?

(४३)

डूबती सन्ध्या दृगों में।
झूलते खग डालियों में।
पवन के भी काँपते पर,
प्राण में पलता करुण स्वर
खिल उठा संगीत मेरा
धूम्र गुम्फित सा सवेरा !

(४४)

मानस बन की मधु बेला सा,
यौवन में दुर्दिन फैलासा,
फागुन में फूटी कलियों सा
मधु प्यासी गुञ्जित अलियों सा
किसने राग बिखेरा ?
आज अन्तिम गीत मेरा !

स्वप्निल जय मंगल हारों पर,
पुष्प अर्घ्य झीने तारों पर,
किसलय हीन बिटप डारों पर
विधि के निठुर प्रहारों पर
सदय दृष्टि से हेरा ?
आज अन्तिम गीत मेरा !

(४५)

नखल तोड़ झोली भर लूंगी।
अपने को ही धोखा दूंगी।
लोहे के बन्धन काटूँगी।
फलक फोड़कर आ जाऊँगी।

यौवन-दीप जलाऊँगी, रूप-राशि सी छाऊँगी।
मद होश पड़े जग-प्रहरी को मोहन मंत्र सुनाऊंगी।
पानी में आग लगा ऊँगी।

भरी दुपहरी ढल जाने दो, नभ को आंखें फैलाने दो।
निशा-वल्लरी खिलजाने दो, साँसमलयकी चलजाने दो।
तब पहला छन्द बनाऊंगी।

रुनझुन रुन झुन कर आऊंगी।
शबनम से अंचल भर लूंगी, मधूकी भीख लुटा दूंगी।
स्वप्न देखने आजाऊंगी।

मेरे बन्दी ! डर मत जाना।
अपनों से कैसा घबराना!
सहसा मुझमें खो मत आना।
उरका स्पन्दन यदि रुकजाये।

प्राण-शिखा सी आऊँगी जीवन कर्पूर जलाऊँगी।
चिर-बन्धन को तोड़ सखे, फूलोंका ताज लगाऊँगी।
मैं स्वप्न बेचने आऊँगी।

(४६)

भूल के अभिशाप हो तुम ।
पुण्य में सोये हुए से पाप हो तुम ।
कौन कहता है अपरिचित ?
जब सुरभि की मधु झलक के नाप हो तुम ?
भूल के अभिशाप हो तुम ।
खोजने निकली तुम्हें थी ।
खोजही मैं बन गयी हूँ ।
चाँदनी सा ओज पी, पी ।
मैं अमा निशि बन गई हूँ ।
धूप से जलते हृदय की सांस हो तुम, वाष्प हो तुम ।
भूल के अभिशाप हो तुम ।

(४७)

मुझे चाहिये हरसिंगार ।
भूल सकूंगी मनकी दुविधा पहन सुरभि का हार
सुलभ समर्पण चमक उठेगा पा तेरा उपहार ।
मेघ में फूलेंगे मन्दार ।
मुझे चाहिये हरसिंगार ।
रजनी का सौन्दर्य विखेरेगा अलि का गुंजार ।
रूठा यौवन मन जायेगा साध मान के श्री शृङ्गार ।
थिरकती मोती सी मनुहार ।
मुझे चाहिये हरसिंगार ।

(४८)

मोती गगन में कौन बोता ?
रात के तारे अलस कर झुर रहे हैं।
रश्मियों के प्राण पानी में पिघल कर घुल रहे हैं।
बाल आँखों में शमा उर कौन सीता है पिरोता !
मोती गगन में कौन बोता ?

काल का संकेत पा, तरणी चली मझ धार माँकी
कौंधती है बिज्जु कम्पित रैन खोया है सँघाती
अब जरा की छिन्न बदली में छिपा सा कौन रोता ?
मोती गगन में कौन बोता ?

नीले वसन नागिन लहरियाँ, मिल गले कुछ लह रही हैं
प्रेम का अभिशाप संज्ञा शून्य सीवे सह रही हैं,
प्राण-परिमिल को बटोरे, कौन तब चिर बाट जीता
मोती गगन में कौन बोता ?

पारिधि के उस पार लख क्लान्त पंछी उड़ रहा है
स्थूल मानव-मिलन के पतझड़ पथों से मुड़ रहा है
आँसुओं की बाढ़ रोके उर-पटल को कौन धोता ?
मोती गगन में कौन बोता ?

(४९)

बन्दी ! यह कैसा बन्धन है !
जीवन का कैसा क्रन्दन है
क्षण में यौवन की मातलता !
क्षण में प्राणों की आकुलता !
पल पल यह कैसा चिन्तन है
बन्दी यह कैसा बन्धन है ?

(५०)

छोड़ दे पथ प्राण अब जीवन जगा कर जा रही हूँ
सुरभि के संसार में आँधी उठी घबरा रही हूँ !

उस पार अटल ही जाना है
सुधियों से मन बहलाना है
शायद लौट नहीं आना है
फिर भी कैसा पछताना है ?

प्राणों में पीड़ा भर जाये, बुझती घड़ियाँ फिर जल जायें
हरियाली प्रावृट सी गाये, पलकों में हिम कण छा जाये
सन्या होने के पहले ही, नभ-तारा बन गा रही हूँ
छोड़ दे पथ प्राण, अब जीवन जगा कर जा रही हूँ !

इस पार सभी धोका खाते हैं
मन को दे मन कब पाते हैं ?
जीत कहाँ हारे जाते हैं ?
पल पल में लुटते जाते हैं !

इसीलिये जीती मरती हूँ, शब्दों में स्पन्दन भरती हूँ
गीतों में भी रो लेती हूँ, आँखों का यौवन खोती हूँ
पुतलियों के पृष्ठ पर चल चित्र ही दिखला रही हूँ
छोड़ दे पथ प्राण अब जीवन जगा कर जा रही हूँ !

बद्ध श्रृंखला खुल जाने दे
विषम कहानी सुलझाने दे,
सब को अपनी कह जाने दे
दुःखों की सीमा आने दे

तब ही बन्दी बोल सकेगा, कल का घूँघट खोल सकेगा
निठुर ! अपने प्यार से ही सिर धुना कर जा रही हूँ
छोड़ दे पथ प्राण अब जीवन जगा कर जा रही हूं !

(५१)

उलट गए मधु के सब घट,
छलक गया जीवन-प्याला,
इस भूली दीवानी पर क्यों
ढाल रहे हो वह हाला ?
मैं सधे सबेरे आई थी।
इस आने का उपहास हुआ।
जब सोया था जग का वैभव।
मुझ को जगने का भास हुआ।

(५२)

उस मिलन को भूल कर
किस भाँति आली चैन पाऊँ ?
प्राण की वह मौन संध्या
किस तरह आँचल छिपाऊँ ?
x x x
मुख पर भौंवों का नर्तन था,
अधरों तक अवगुण्ठन था,
लज्जा में ममता छाई थी,
भावी आशंका मय था !
उस प्रणय को भूल कर
मैं कौनसा जीवन बिताऊँ ?
सुर—साधना के स्वर्ण पल
किन साधनों से फेर लाऊँ ?
रजनी की नीरवता में
ऋतु फूलों का शृंगार किये

एकान्तज्वार से आये थे।
वसुधा का मृदु सार लिये!
सुमन—सञ्चित यह हृदय
पर मरुभूमि में मैं दे न पाऊँ,
मधु—मिलन को भूल कर
किस भाँति जी में चैन पाऊँ?
साधना की सुखद छाया में
सुलभ सा सन्देश आया,
प्राण की उनमन तड़प में
कौन सा उन्मेष आया?
वे तराने भूल कर मैं
कौन सा प्रिय गीत गाऊँ?
इस प्रभा को छोड़ कर मैं
कौन सी प्रतिमा सजाऊँ?

(५३)

तुम कौन कहाँ से आये हो?
किस राह सखे, तुम को जाना,
प्यासे हो, अलसाये हो
मैंने तुम को कब पहचाना?

है निशा काली विधुर वन
हैं अचेतन के अलस क्षण
क्यों हुए हो यों विकल मन
क्या यही जीवन निरीक्षण?

———

(५४)

मौन रहो तुम, मैं बोलूँगी
वह जीवन का चिर-चिर बन्धन,
रुक सकता प्राणों का स्पन्दन,
आँसू पी जाये जो क्रन्दन
रूठे मन का पहला मधुक्षण
अग-जग के सब स्वर खोलूँगी
मौन रहो तुम, मैं बोलूँगी !

बँधा हुआ दुनिया का क्षण क्षण-
मूर्छित है पथ पथ प्रकाश-कण,
छिपा हुआ शमशीरों में रण
ओठों की हरकत में यह प्रण-
भव-पंछी के पर खोलूँगी
मौन रहो तुम, मैं बोलूँगी !

बँधा हुआ सागर का पानी,
खो जाये आशा दीवानी,
मनुहारों में हँसता मानी
वह भी थी कैसी नादानी,
किस्मत की कड़ियाँ खोलूँगी
मौन रहो तुम, मैं बोलूँगी !

मेरी आहों के सुन्दर पल,
सुरभि संकुलित पुष्पों के दल
आज में जीवित रहे कल
फिर न कभी ऐसा होगा छल
छिन में ही 'ग्रन्थी' खोलूँगी
मौन रहो तुम, मैं बोलूँगी !

(५५)

क्यों जवानी भागती है, छोड़ मैं जा ही रही थी,
साधना के क्षिति-पलट पर श्याम को ला ही रही थी
उन मनोरम घाटियों में प्यार के स्वर झूलते हैं,
विकलता के निठुर पल में मिलन के क्षण शूलते हैं।
मैं तुम्हारी खोज में चिर कम्पसी आही रही थी
क्यों रवानी रूठती है छन्द मैं गा ही रही थी
छोड़ मैं जा ही रही थी

क्या सुनाऊँ उम्र भर मैं ओसकण चुनती रही हूँ
और आँखों में उन्हीं के हार को बुनती रही हूँ
सलज उनकी आयतों को ही सदा गुनती रही हूँ
मैं समझ पाई नहीं वह कौन सुधि आ ही रही थी
छोड़ मैं जा ही रही थी

मौन मेरा दर्द योंही रह गया सोया हुआ सा
रूप के चैतन्य में रस बूँद सा खोया हुआ सा
शरद-सूने मेघ में वह राग सा धोया हुआ सा,
मिलन के अन्दाज पर मैं ज़िन्दगी ढा ही रही थी
छोड़ मैं जा ही रही थी।

(५६)

प्रिय अधर की लालिमा हूँ,
प्रणय का उपहास हूँ मैं।
पवन में उड़ती चरण-रज,
पंथ का अधिवास हूँ मैं।

प्यार हूँ, प्रारब्ध हूँ वह
शुचि सुधाकी धार हूँ मैं।
सिन्धु की नागिन लहर भी,
सँगीत का मृदुसार हूँ मैं।

कवि-हृदय की कामना हूँ,
कन्त का सुप्रवास हूँ मैं।
बीन के उलझे तरुण स्वर,
यामिनी का हास हूँ मैं।

हार भी हूँ जीत भी हूँ,
सखि, मानवी प्रतिकार हूँ मैं-
पवन की उड़ती चरण रज-
प्रेम का श्रृंगार हूँ मैं।

(५७)

चुपचाप शमा बुझ जायेगी, जब जल जायेगा नभतारा,
शिव के नयनों से झड़नी है जीवन की ज्योतिर्धारा,
जग की वाणी निस्पन्द हुई जब देखी यौवन की कारा
कौन जानता है दृग में छा जायेगा अम्बर सारा?
दिल के टुकड़ों को लेकर जग नाप रही हूँ अपना–
कोई कहता परिवर्तन, कोई कहता है सपना–
कैसे मैं दिन रात सहूँगी तारों का निशिदिन तपना,
रह रह कर यह प्रश्न उलझता, अरमानों का कँपना–
मरती जी जीकर पल पल स्मृतियां भार बनी जाती हैं,
संभव है मिलने की वे मृदुतार बनी जाती हैं,
भूली–सच कैसे कह दूँ? तकरार बनी जाती हैं।
दुर्बल किस्मत की ही वे झनकार बनी जाती हैं,
डूबते मेरे मनोरथ आज के उल्लास में कल
बुझ गई जीवन। शमा जब जल उठे निस्पन्दन नभस्थल।

(५८)

कैसे पूछूँ 'सखे' कौन हो?
नन्हीं कलिका के कम्पन हो?
अश्रु भरी आँखों के अंजन?
किन भावों के परिवर्तन हो?
कैसे पूछूँ 'सखे' कौन हो?
पथ भूल गये या सपना है,
हृद् धड़कन या बंशी रव है?
रूठे आये हो जगती से
या खोया सब कुछ अपना है?

(५९)

घर लौट जाऊँगी !

लोचनों में परिधि भर, कण्ठ में ही 'रूँधते' स्वर,
सुख के विफल सपने सिसकते छोड़ जाऊँगी !
सखे, अब लौट जाऊँगी !

मेरे दुख की निश्चल काया, मृदुल कल्पना जाल बिछाया,
अस्थिर यौवन, स्थिर मधुरिमा सौंप जाऊँगी !
सखे, अब लौट जाऊँगी !

मेरी परवशता के जग में, अभिलाषा ले अपने दृग में,
जग विमुख, पर बन्धनों को तोड़ जाऊँगी !
सखे, घर लौट जाऊँगी !

(६०)

देख कहीं छू जाय नहीं तू मेरी इन दर्दिल आहों से !
वरदानों से अभिशापों से मेरी स्वप्निल चाहों से,
मत गिरने दे पलकें अपनी जल जायेंगी दाहों से,
देख कहीं चल जाय नहीं तू मेरी भूली राहों से!

अर्ध-सुप्त अभिलाषा ले अन्धड़ में प्राण दिपे हैं,
पीड़ा का स्पन्दन मौन हुआ यौवन के बाण छिपे हैं,
गुमराह कहीं हो जाय न तू मेरी इन काली छाहों से
देख कहीं डर जाय न तू मेरी इन दर्दिल आहों से !

तोड़ झीने बन्धनों को गान, पर मेरे तरुण स्वर,
काँपती मेरी वियोगिनि आँख से बहना करुण ज्वर
नापता क्या जगत का उर मेरी सीमित बाहों से ?
देख हीं बुझ जाय न तू मेरी इन जलती आहों से !

(६१)

तू कहाँ चला किस राह चला
मूँदे द्वारों को खोल चला,
रेशम के बन्धन तोड़ चला,
उर के छालों को फोड़ चला,
आँखों में हाला घोल चला
तू कहाँ चला ?

यह गोधूली की मधु-बेला,
आशा का आँसू से मेला,
जीवन को तुमने आ ठेला,
सुख तरल सुधा शुचि से खेला
किस आँचलने उसको झेला,
तू कहाँ चला ?

यह लो यौवन की मधु-शाला,
मानव उर की मोहक ज्वाला,
अलि, साधों का अभिनय आला,
माणिक-रत्नों का दीपक बाला
चुभता उर में निशि-दिन भाला
तू कहाँ चला ?

समाप्त